कथनी-करनी एक समान

गणेशदास अग्निहोत्री : जीवन-यात्रा

स्वामी योगेश्वरानंद सरस्वती के साथ गणेशदास अग्निहोत्री, दर्शनकुमार, सरोज, राज बुद्धिराजा, सुनीता बुद्धिराजा, यज्ञेश्वर बुद्धिराजा एवं वेदप्रकाश मिगलानी
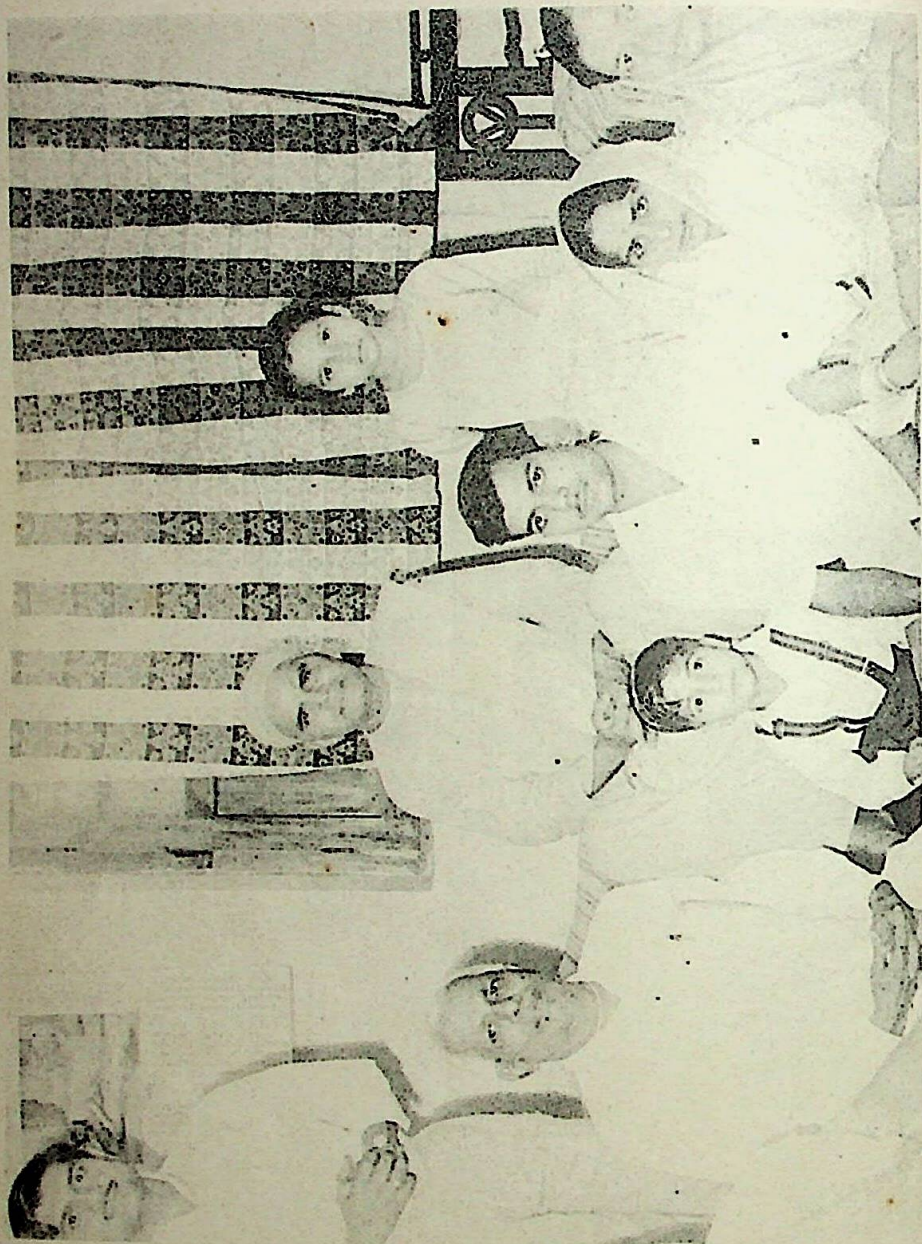
कथनी-करनी एक समान

(गणेशदास अग्निहोत्री : जीवन-यात्रा)

कथनी-करनी एक समान

(गणेशदास अग्निहोत्री : जीवन-यात्रा)

संकलन एवं सम्पादन

राज बुद्धिराजा

प्रकाशन
तरुण
बी-5, प्रीत विहार, दिल्ली-110092

प्रथम प्रकाशन
दिसम्बर, 1997

मूल्य
सप्रेम भेंट

मुद्रक
एस०एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

KATHANI-KARANI EK SAMAAN (Hindi)

Collected & Edited by

Raj Buddhiraja.

आमुख

अपने पिताजी की जीवन-गाथा 'कथनी-करनी एक समान' प्रस्तुत करते हुए मुझे गर्व का अनुभव हो रहा है। अपनी दादी माँ और पिताजी के मुख से सुनी-सुनाई घटनाओं को मैंने लिपिबद्ध करने की चेष्टा की है। उनका जीवन अथाह सागर के समान था, जिसके तट पर बैठकर परिचित, अपरिचित, प्रियजन, परिजन शांति का अनुभव किया करते थे। मैंने उन घटनाओं को मूर्त रूप देने की चेष्टा की है, जिन्हें बहुत कम लोग जानते हैं। वस्तुतः विभाजन-पूर्व संघर्षरत जीवन की यह कहानी है। विभाजन-बाद की उनकी जीवन-शैली से सभी परिचित हैं। भोर से साँझ तक की ज़िंदगी में एक-एक मिनट कसा हुआ रखना आसान काम नहीं है। मुझे उनकी बेटी होने का गौरव प्राप्त है।

यह छोटी-सी पुस्तिका दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में उनका जीवन और दूसरे भाग में गुरुदेव स्वर्गीय महात्मा प्रभु आश्रित जी की सौम्य वाणी और अन्त में माताश्री के भजन। इसमें आदरणीय स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती और चैतन्य मुनि के लेख भी संकलित हैं, जिनमें गणेशदास कुकरेजा से लेकर गणेशदास अग्निहोत्री तक की ज़िंदगी का सफ़र है। मैं उनका धन्यवाद करती हूँ कि उन्होंने अपने व्यस्त जीवन में से कुछ पल निकालकर पुस्तक के लिए लिखा।

चिरंजीव दर्शनकुमार कुकरेजा और आयुष्मती सरोज के प्रयास से पिताजी की विस्मृत घटनाओं को साकार रूप मिल सका, इसके लिए उनका साधुवाद।

मेरे अकिंचन प्रयास से यदि किसी के लिए कुछ भी करणीय हो सका तो अपना श्रम सार्थक समझूँगी। कुछ कहने की अपेक्षा सुनने को अधिक उत्सुक हूँ।

सप्रणाम,

राज बुद्धिराजा

क्रम

यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम्

वेदों का मनुष्य मात्र को यह सन्देश है कि जो तुम्हारा अन्दर है वही बाहर हो, और जो बाहर है वही अन्दर हो । यह नहीं कि अन्दर कुछ और बाहर कुछ । अन्दर-बाहर की एकता व्यक्ति को उन्नति के शिखर पर पहुँचा देती है । वह देवकोटि में पहुँच जाता है । अन्दर और बाहर के दो दर्पण हैं, जिनमें हर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की झाँकी ले सकता है । दो दर्पणों में एकत्व का दर्शन ही असल में आत्मदर्शन है । व्यक्ति का अन्दर उसका अन्तःकरण है, उसका अपना आपा है; व्यक्ति का बाहर उसका समाज है, प्राणिमात्र है । आत्मा और समाज उभय दर्पणों में एकत्व का दर्शन ही आत्म-दर्शन है, परमात्म-दर्शन है । इस कोटि के व्यक्ति बिरले ही होते हैं । सामान्य व्यक्ति यह कहते पाये गये हैं कि यह हमारा व्यक्तिगत प्रश्न है, हम कैसे भी रहें, कैसे भी खायें, कैसे भी पीयें । ऐसे व्यक्ति ही दोगले कहाते हैं । एकले तो बिरले ही होते हैं । उन्हीं बिरले व्यक्तियों में से थे हमारे मान्य श्री लाला गणेशदास जी अग्निहोत्री ।

पारसमणि का स्पर्श

यह संयोग ही कहना चाहिए कि लाला गणेशदास जी को ऐसा पारसमणि स्पर्श मिला कि वह लाला गणेशदास जी से महात्मा गणेशदास बन गये । यह स्पर्श भी अन्दर-बाहर का दो सत्ताओं का होता है । यदि अन्दर का स्पर्श परमात्मा का मिलता है तो बाहर का स्पर्श महात्माओं का मिलता है । परमात्मा का स्पर्श आन्तरिक दर्पण को शुद्ध करता है और महात्मा का स्पर्श बाह्य दर्पण को शुद्ध करता है, तब जाकर व्यक्ति के अन्दर और बाहर के दर्पण शुद्ध हो पाते हैं। लाला गणेशदास जी का परम सौभाग्य था कि उन्हें स्वनामधन्य महात्मा

प्रभु आश्रित जी का स्पर्श मिला और लोहा कुन्दन बन गया ।

परमात्मा अपने सखा आत्मा को सदैव सहज स्पर्श देता है और महात्मा अपने शिष्य को स्पर्श देता है । उस स्पर्श को भाग्यशाली ही अनुभव कर पाते हैं, जिससे उनका उद्धार हो जाता है । मन्दभागी नास्तिक उस स्पर्श को सहन नहीं करते । उनको अस्पृश्यता-रोग ने घेरा होता है । अतः वे परमात्मा और महात्मा के कृपापात्र नहीं बन पाते । लाला गणेशदास उन भाग्यशाली आत्मिक व्यक्तियों में से थे जिन्हें परमात्मा का आन्तरिक स्पर्श और महात्मा प्रभु आश्रित जी का बाह्य स्पर्श मिला जिससे उनका जीवन भक्तिमय यज्ञ का जीवन बन गया । फिर तो उन्होंने भी जिस पर अपना वरदहस्त रखा वह भी उन्नति के पथ पर अग्रसर हो गया ।

अग्निहोत्री की उपाधि

महात्मा प्रभु आश्रित जी के आशीर्वाद से जहाँ वह गायत्री माता की गोदी के अधिकारी बन गये, वहाँ यज्ञमय जीवन बनाने का प्रयास किया । उन्होंने नित्य यज्ञ को करने का निश्चय किया और उसको हर अवस्था में अपना अंग-संग बना लिया । गरीबी हो, अमीरी हो, हर अवस्था में उनके अग्निहोत्र की अग्नि अखण्ड जलती रही । इसमें उनकी सहधर्मिणी शान्तिदेवी जी का पूर्ण सहयोग मिला । आँधी हो, तूफ़ान हो, वर्षा हो, गर्मी हो, नित्य अग्निहोत्र में कभी बाधा न आने पाई । न केवल नित्य अग्निहोत्र ही करना मात्र उद्देश्य था, उनका समय निश्चित था । उनकी इस प्रक्रिया को देखकर दण्डी स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने उन्हें अग्निहोत्री की उपाधि दी, तब से वह और उनका परिवार अग्निहोत्री के नाम से जाना जाने लगा ।

कालरूपी अश्व के सहसवार

वेदों में मनुष्य को उपदेश दिया गया है कि यदि वह सफलता चाहता है तो वह कालरूपी अश्व पर सवार रहे—

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः

कालरूपी अश्व दौड़ा जा रहा है । उस पर क्रान्तदर्शी ही सवार हो पाते हैं । जो नहीं हो पाते उन्हें कालरूपी अश्व अपने पैरों तले रौंद देता है । श्री लाला गणेशदास जी अग्निहोत्री कालरूपी अश्व पर सदैव सवार रहते थे । कोई भी कार्य हो, यज्ञ हो, पूजा-पाठ हो, व्यापार हो, घर हों, बाहर हों, यात्रा में हों, सब कुछ निश्चित समय पर होता था । उनकी इस विशेषता ने उन्हें सदैव विजयी बनाये रखा ।

उसी का परिणाम था जब काल उन्हें लेने आया तो यज्ञ भवन के द्वार पर लिखा पाया कि अभी प्रतीक्षा करो, जब यज्ञ में पूर्णाहुति दे रहे हों तब आना । फिर वही हुआ, यज्ञ करते-करते नश्वर शरीर को आहुत कर दिया मानो श्वेत वस्त्रों को गेरुआ रंग पहना दिया । यही संन्यास की परिभाषा है और यही है समिधार्पण की वास्तविकता । यही है व्यक्ति का अग्नि की गोद में बैठना । गणेशदास जी धन्य हुए । उनका जीना भी धन्य और मरण भी धन्य । यदि जीने की कला सीखनी हो तो महात्मा गणेशदास जी से सीखो । यदि मरण कला सीखनी हो तो भी महात्मा गणेशदास जी अग्निहोत्री से सीखें ।

—दीक्षानन्द सरस्वती

ओ३म्

परम पिता परमात्मा जब किसी जीव पर कृपा करते हैं तो उसका किसी प्रज्वलित दीपक से सम्पर्क करा देते हैं ताकि उसके प्रकाश में वह ठीक से देख सके; ठोकर, काँटा, गड्ढा आदि को पहचान सके और अपने बुझे हुए दीपक को प्रज्वलित भी कर ले। मेरे जीवन में प्रभु-कृपा कुछ इसी प्रकार हुई। सन् 1980 में मेरे जीवन का प्रथम वेदीय यज्ञ गुरुकुल गौतमनगर में हुआ। उसमें गुरुकुल आचार्य श्री हरिदेव जी ने अग्न्याधान के अवसर पर श्री अग्निहोत्री परिवार को भी बुलाया था। उसी समय प्रथम बार इस यज्ञ एवं गायत्री के अनन्य भक्त परिवार से भेंट हुई। यह अवसर मेरी जीवनधारा का निर्णायक स्थल था। इससे पूर्व मेरे जीवन की दिशा दूसरी ओर थी। उस समय मैं स्वयं नहीं जानता था कि यह भेंट क्या रंग लाने वाली है। जैसे रेल की लाइन में काँटा बदलने से गाड़ी कहीं की कहीं पहुँच जाती है अथवा बिजलीघर की ग्रिड का स्विच बदलने से विद्युत प्रवाह किसी दूसरी लाइन में प्रवाहित होने लगता है उसी प्रकार यह भेंट भी मानो मेरी जीवन-लाइन को बदलने वाला काँटा या स्विच ही थी।

यज्ञ के अवसर पर उनके भाव सुनने को मिले। उनकी बात अन्य लोगों ने भी सुनी थी, उनके दर्शन भी सभी ने किये थे, परन्तु चूँकि प्रभुदेव ने मुझे जोड़ना था ऐसे पवित्र प्रेरक से; उनके भाव सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं बहुत प्रभावित हुआ। उसी अवसर पर पूज्यपाद श्री अग्निहोत्री जी ने मुझे अपने घर जवाहरनगर आने को कहा। मैं एक दिन जब वहाँ पहुँचा तो उस घर में प्रवेश करते ही मुझे बड़ा सुकून, शांति, तृप्ति-सी लगी, मानो सूखी फसल को वर्षा का पानी मिल जाने पर पुनः हरियाली लौट आई हो। धूप से

आक्रान्त पथिक को किसी सघन वट वृक्ष की प्रगाढ़ शीतल छाया मिल गई हो । घर में प्रवेश करते ही हवन और सामग्री की भीनी-भीनी सुगंध आने लगी । घर के आंतरिक प्रांगण में एक छोटी किन्तु बहुत सुन्दर सुघड़ यज्ञशाला बनी हुई । उसकी सुन्दर वेदी तथा स्तम्भ सबमें संगमरमर बड़ी युक्ति से लगाया हुआ । संगमरमर की पट्टियों पर वेद सूक्तियाँ लिखकर यज्ञशाला को सजाया गया था । घर की दीवारों पर वेद मंत्र भाष्य सहित सुसज्जित थे । संतों, महापुरुषों के सुन्दर चित्रों से शोभा हो रही थी । घर क्या था मानो मंदिर था । स्वत: सहज ही सात्त्विकता का उद्भव होता था, ऐसा वहाँ का वातावरण बना हुआ ।

पूज्य अग्निहोत्री जी से वार्तालाप होने पर पता चला कि इस घर की आधारशिला रखते समय उनके गुरु प्रात:स्मरणीय पूज्यपाद श्री प्रभु आश्रित जी महाराज द्वारा वेदों को चारों कोनों में स्थापित किया गया था । यहाँ पर करोड़ों गायत्री जप हुए हैं, सैकड़ों वेदपारायण यज्ञ हुए हैं और नित्य प्रति यज्ञ, गायत्री यज्ञ तथा वेदीय यज्ञ तो सदैव चलता ही है । यज्ञशाला में अखंड अग्नि निरन्तर चल रही है । अनेक श्रेष्ठ संत जन, महात्मा, संन्यासी, यति, योगी व विद्वान् यहाँ बराबर आते रहे हैं, इसलिए इस स्थली के परमाणु सात्त्विक, पवित्र, प्रेरक व शांतिदायक बन गये हैं । कितने तप से सींचा था इस बगिया को उन्होंने । इतने दिनों की तपश्चर्या का, क्रियात्मक साधना का यह प्रत्यक्ष फल दीख रहा था, स्वयं बोल रहा था । वास्तव में मैं बेहद प्रभावित था उस सबको देखकर, अनुभव करके । इससे पूर्व मैंने अपने जीवन में ऐसा वातावरण नहीं देखा था । उनके वार्षिक यज्ञ में, जो प्रतिवर्ष फरवरी मास में होता है, मैंने पूर्णावधि भाग लिया । बड़ी उदारता से खर्च करते हैं । घी, सामग्री, मेवा प्रचुर मात्रा में लगाते हैं, जैसे लूट का माल हो । इस प्रकार इतनी महँगी वस्तुओं को यज्ञ में डालते मैंने पहले किसी को नहीं देखा था । इतना ही नहीं, बाहर से आये हुए सब व्रतियों के लिए खाने-पीने की, ठहरने की बड़ी सुन्दर उदारतापूर्ण खुले मन से उत्तम व्यवस्था थी । विद्वानों का पुष्कल दक्षिणा देकर, वस्त्र आदि

देकर समुचित सत्कार और अंतिम दिन भंडारे में खर्च । मेरे लिए तो यह सब नया परन्तु प्रेरणा से पूर्ण एक आदर्श था । यह सब देखकर मेरे मन में प्रबल प्रेरणा उठी कि मैं भी ऐसा क्यों न होऊँ ?

क्यों न हो, जो कर्मठ व्यक्ति हैं वे वाणी से नहीं, करनी से उपदेश देते हैं । वास्तव में तो वही उपदेशक हैं और वे ही सच्चे साधक हैं । उन्होंने अपने श्री गुरुजी से इस व्रत को, इस संकल्प को, इस सिद्धान्त को प्राप्त किया और फिर आदरपूर्वक निष्ठा से उसे पाला-पोसा, सजाया-सँवारा, पल्लवित-पुष्पित-फलित किया । उनकी साधना प्रत्यक्ष बोल रही थी । इसे ही तो साधना कहते हैं । सिद्धान्त का दृढ़तापूर्वक पालन करने का नाम ही साधना है । वे सच्चे साधक थे । अपने परिवार को भी उसी व्रत में, उसी संकल्प में निष्णात कर दिया, फिर अपने परिवार तक ही सीमित न रहकर अनेक लोगों को इस पवित्र मार्ग पर प्रेरित करके लगाया । उसे गायत्री से, यज्ञ से, वेदों के यज्ञ से जोड़ा । उसे सत्संग के, प्रभु-भजन के लिए प्रेरित किया । इसे ही आराधना कहते हैं । भगवान की सेवा का नाम ही तो आराधना है । यह जनता-जनार्दन ही तो भगवान का रूप है । जो अज्ञानवश संसार में भ्रमित हैं, जिन्हें कुछ उपाय नहीं सूझता, रात-दिन क्लेशों में पड़े रहते हैं, उन्हें मार्ग दिखाना, बताना, उनकी सेवा, उनके विचारों को, कर्मों को, भावों को समुन्नत करना, कुकर्मों से छुड़ाकर सद्कर्मों में लगाना, यह ईश्वर-सेवा ही है, ईश्वर-आराधना ही है । तो वे ईश्वर-विश्वासी, आस्थावान, निष्ठावान, श्रद्धावान, सच्चे उपासक थे, सच्चे साधक तथा वास्तविक आराधक थे इसलिए उनका प्रभाव प्रेरणादायक होना ही चाहिए था सो हुआ और मैंने भी अपने घर में एक छोटी-सी सादा-सी यज्ञशाला बनाई ।

उस नवनिर्मित यज्ञशाला के उद्घाटन के समय मैंने पूज्यपाद अग्निहोत्री जी से प्रार्थना की कि अपने हवनकुंड से अग्नि लेकर मेरी छोटी यज्ञाग्नि भी जलवा दें । मैं सोचता था, मैं एक ग्रामीण व्यक्ति हूँ, गाँव जवाहरनगर से दूर भी पड़ता है, पता नहीं जायें या न जायें । परन्तु उन्होंने मेरी प्रार्थना प्रसन्नता से स्वीकार

की और अपनी समस्त भक्त मंडली सहित निश्चित दिन को ठीक समय पर गाँव में पधारे । अपने ही हवनकुंड से अग्नि यहाँ पर स्थापित कराई, जो अभी तक चल रही है । दोनों समय यज्ञ होता है । सब परिवार को उद्बोधन दिया, आशीर्वाद दिया और मेरा उत्साहवर्धन किया ।

अब धीरे-धीरे घनिष्ठता बढ़ती गई । मैं 'पिताजी' कहकर संबोधन करने लगा । अब यह घर मुझे पराया नहीं अपना ही लगता था । जब भी उनसे मिलने की हूक उठती मैं दौड़ा चला जाता । पिताजी व माताजी खूब स्नेह-प्रेम करते । प्रतिवर्ष के वार्षिक यज्ञ में पूरी अवधि वहीं रहता और पूरा लाभ उठाता । जहाँ पिताजी का पूरा प्यार मेरे साथ था वहाँ माताश्री का प्रेम भी भरपूर था । मैं जब वहाँ होता तो अनुभव करता कि जैसे स्वयं मेरी माता ही मुझे प्रेम-स्नेह से दुलार रही हो । जाते ही कुशलक्षेम पूछतीं, फिर तुरन्त कुछ-न-कुछ खिलातीं-पिलातीं । पिताजी आहट सुनते तो पूछते, कौन ? मैं जाकर चरण स्पर्श करता, नमस्ते करता तो प्रसन्न होते । माताजी को कहते, देवी जी, देखो चौधरी साहब आये हैं । इन्हें कुछ खिलाओ-पिलाओ । माताजी पहले ही खिला चुकी होती थीं । यज्ञ की, जप की बात पूछते । सब ठीक, नियत चल रहा है सुनकर प्रसन्न होते, शाबासी देते । मैं भी आशीर्वाद प्राप्त करके प्रसन्न होता । कुछ सत्संग होता । इस तरह बैटरी चार्ज कर लाता ।

वहाँ पर देखा, माताएँ, बहन-बेटियाँ अनेक बार वेदपारायण कर चुकी हैं । कई ने तो सौ-सौ बार सामवेद, यजुर्वेद के पारायण कर लिए । मैं भी चाहता कि जब ये बहनें, माताएँ कर सकती हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकता ! सो मैंने भी हिम्मत की और सामवेद से वेद-पाठ यज्ञ के समय शुरू कर दिया । 7 पृष्ठ प्रातः, 7 पृष्ठ सायं इस प्रकार लगभग दस दिन में पारायण होने लगा । पहले कुछ दिन कठिनाई हुई, फिर धीरे-धीरे पाठ भी ठीक हो गया और गति भी बढ़ गई ।

पूज्य पिताजी की इस सुन्दर बगिया में प्रेरणा ही प्रेरणा बिखरी पड़ी थी । यज्ञ की प्रेरणा, वेदपारायण की और गायत्री-उपासना की प्रेरणा । महात्मा प्रभु

आश्रित जी की पुस्तकों गायत्री रहस्य, गायत्री कुसुमांजली, मंत्रयोगादि को पढ़कर तथा इस पवित्र परिवार के सदस्यों की गायत्री-निष्ठा को देखकर मैं भी पूरे मनोयोग से गायत्री-उपासना में जुट गया। शनैः-शनैः जीवन में परिवर्तन होने लगा। जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया। प्रतिवर्ष लगने लगा कि पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष यह प्रगति हुई। निरीक्षा होने लगी। साधना फलवती, सुस्वाद लगने लगी। पूर्व की जीवनशैली नीरस होती गई और आगामी पथ खुलता गया। इस सबका प्रेरक पूज्य पिताजी का प्रेक्टिकल जीवन था। उन्होंने जो करके दिखाया था उसका प्रभाव था। वह ज्योति बनकर मुझ साधारण ग्रामीण नाचीज़ की भी छोटी-सी दीपिका जला गया। सूत्रकार तो वह परम दयालु परम देव ही है जिसने अपनी कृपा से पूज्य पिताजी को माध्यम बनाकर मार्ग प्रशस्त किया, परन्तु यदि केवल मौखिक रूप से कोई कहता कि ऐसा करो तो मैं शायद नहीं करता, पर यहाँ तो भगवान के एक सच्चे साधक ने भगवान से भेंट करा दी और उन्हें प्रेरणा देकर उनके घर पर बुला भेजा, प्रत्यक्ष करा देने के लिए कि देख, यह है करने का फल, बोये हुए की तैयार फसल यह है। उन्होंने जैसा बोया था वैसी सफल फसल सामने प्रत्यक्ष थी। उनके सुकर्म बन रहे थे, अन्य को मार्गदर्शन मिल रहा था, साथ ही प्रसिद्धि, प्रशंसा, यश, कीर्ति फैल रही थी। यही तो है जीवनकला। परम देव की व्यवस्था अकाट्य है।

'उसी के कराये होता है मानव का उद्धार।
उसी के मिलाये मिलती है सागर से नदी की धार।'

उन्हीं का जीवन जीवन है, जो बोलकर नहीं करके बताते हैं। उनकी वाणी नहीं जीवन बोलता है। उनकी स्वतः खुशबू फैलती है। समय का सम्मान करना तो कोई उनसे सीखे। समय के पाबन्द। यज्ञ का समय होते ही ठीक समय करा देते। कोई पुत्र-पुत्री यदि नहीं पहुँच पाया तो उसे प्रेम से एक बार आवाज़ देते—पुत्र/पुत्री, आओ समय हो गया और इधर शुरू हो जाता। अन्यत्र भी कहीं जाना होता तो निश्चित समय अवश्य पहुँच ही जाते। मेरे घर पर

भी ठीक समय पर जा पहुँचे; यद्यपि अनजान जगह, रास्ता देखा हुआ नहीं, फिर भी ठीक समय पर आ गये । जो समय का आदर करता है, समय को अवश्य यश दिलाता है ।

अपने परिवार को इसी प्रकार के साँचे में ढाल दिया उन्होंने । किसी ने ठीक ही कहा है कि साँचे ठीक होने चाहिए । पहले यदि साँचे ठीक बन गये तो सिक्के तो निश्चित रूप से ठीक होंगे, खरे होंगे, त्रुटिहीन ही होंगे । पूरा परिवार उसी रंग में रंग गया । क्यों न हो, जहाँ वेद की आज्ञा यानी भगवान की आज्ञा का पालन होता हो; संतों-महात्माओं का सत्संग घर में ही होता हो । श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ और परम धर्म वेद का पठन-पाठन जिस घर में नित्य होता हो तो उसका प्रतिफल सुख, शांति, वैभव, ऐश्वर्य मिलने में कोई संशय कैसे हो सकता है । उसी का असर तद्नुरूप क्रिया-व्यवहार सब परिवार में प्रत्यक्ष देखने को मिल रहा है । माताश्री हारमोनियम पर प्रभु गीत गाती हैं तो पिताश्री खड़ताल की संगत देकर भजन में सहयोगी बनते हैं । बहू सरोज चिमटा, पुत्र दर्शन ढोलक तथा अन्य प्रेमी भक्तजन मंजीरा आदि लेकर प्रभु-भक्ति के मधुर संगीत में, गायत्री व ओ३म् संकीर्तन में तन्मय हो जाते हैं । ऐसी मिसाल दुर्लभ है जो धनपति होते हुए इस प्रकार स्वयं पूरे परिवार सहित प्रभु-भजन गाते हों, मिलकर प्रभु-अर्चना करते हों । इनके स्तर के धनाढ्य लोग तो प्रायः ऊपर हवा में ही उड़ा करते हैं । क्लबों व होटलों के माहौल में ही अपनी शान समझते हैं । इस अध्यात्म के खजाने का तथा इनके मर्म जानना, समझना तो दूर उलटे इसे हेय समझते हैं, रूढ़िवाद कहकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं, परन्तु यहाँ तो घर के मुखिया ने ऐसी परिपाटी डाली है कि जन्म से ही इसी वातावरण में रचा-पचा देने वाली घुट्टी पिला दी है इसलिए उनके बच्चे और पौत्र-पौत्री, नाती-नातिन व प्रपौत्र तक भी सहज ही इस स्वर्गीय परम्परा से गुंथित से होकर लग गये तथा इस धारा को निरन्तर श्रद्धापूर्वक उत्साह-लगन के साथ चला रहे हैं ।

एक और बड़ी ही उत्तम बात, मनुष्य से देवत्व को प्राप्त कराने वाली बात

यहाँ होती है । देवता देने वाले को कहते हैं । इस परिवार में देने की परम्परा बड़ी विशेष है । माताश्री हमेशा देती रहती हैं । कोई भी संत-महात्मा, विद्वान-अतिथि आवे तो उसे कुछ देंगी अवश्य, उसे खिलाये-पिलाये बिना तथा कुछ दान दिये बिना नहीं जाने देतीं । इससे सब लोग उत्साह से इस घर में दौड़े आते हैं क्योंकि सबको मान-सम्मान, सत्कार अच्छा लगता है, स्वाभाविक है । इससे परिवार की सर्वत्र प्रशंसा होती है । यश होता है । दानी की कीर्ति होनी ही चाहिए, इसलिए होती है । इससे देवत्व बढ़ता है, दिव्यता आती है । पिताश्री ने दान के मर्म को जाना था । वे एक अच्छे किसान की तरह जानते थे, यह बोना है, वपन है । जो बोया जायेगा वही कई गुणा होकर पुन: लौटेगा । देने से घटता नहीं वरन् घर-बार सब पुन: भर जायेगा । और प्रत्य . देख रहे हैं, परम पिता परमात्मा खूब भर रहा है । माताश्री को तो मानो अन्नपूर्णा सिद्ध हैं । उनकी रसोई तो अन्न का अक्षय भंडार है । किसी भी समय जाओ, खाने को अवश्य मिल जायेगा । और घर आये को ही खिलाती हैं या देती हैं सो ही नहीं, अन्यत्र भी जा-जाकर कपड़े, रज़ाइयाँ, गद्दे, कम्बल, भोजन तथा बड़ी-बड़ी राशि धन-दान भी देती हैं । यह देवता बनने की प्रक्रिया निरन्तर चल रही है; उसी अनुपात से सर्व नियन्ता सर्वेश्वर इस परिवार की नियत के अनुसार, इनकी वर्तनी के अनुरूप भरपूर धन-धान्य, सुख-शांति, वैभव-ऐश्वर्य दे रहा है ।

यह सब उन कर्मनिष्ठ, कर्मयोगी महापुरुष की साधना का फल है । साधना मायने जैसा ऊपर बताया, एक सिद्धांत का ठीक-ठीक पालन पूरी समझदारी, ईमानदारी व जिम्मेदारी से करना । तो उन्होंने अपने पूज्य गुरु जी की आज्ञा को ठीक से समझकर आत्मसात किया; जीवन-भर स्वयं उस पर दृढ़तापूर्वक चले और पूरे परिवार को चलाया । इसी कारण मेरे जैसे अनेक भूलों-भटकों को अपना प्रत्यक्ष आदर्श प्रस्तुत करके प्रेरित किया । उनकी कथनी-करनी एक थी इसीलिए उनके जीवन को आदर्श कर तदनुसार चलकर कोई भी अपने जीवन को सफल बना सकता है ।

मैं आभारी हूँ पूज्यपाद पिताजी का, माताजी का । उनके चरणों में बारम्बार हृदय से वन्दन करता हूँ । श्रद्धा-सुमन-अंजलि श्रीचरणों में निवेदन करता हूँ तथा माताश्री के लिए दीर्घ आयु की प्रभुदेव से प्रार्थना करता हूँ कि माताजी चिरायु हों और उनके प्रेम-स्नेह का पवित्र आँचल हमारे सिर पर रहे ।

—चैतन्य मुनि वानप्रस्थ

गुरुकुल मंझावली
यमुना तट मंझावली
जिला फरीदाबाद (हरियाणा)

कथनी-करनी एक समान

(गणेशदास अग्निहोत्री : जीवन-यात्रा)

जब ज़िन्दगी के आकाश पर साँझ ढलने लगती है तब यह मन कभी तो सतरंगी आकाश निहारने लगता है, पर कभी बेतरतीब पड़े पलों को पलटकर देखने लगता है। साँझ आखिर साँझ होती है और उसके बाद सुरमई और काली रात को आना ही होता है। इन्सान इस वक़्त को ज्यों-ज्यों अपने नज़दीक आता हुआ देखता है तो वह कभी उदास और कभी गुज़रे ज़माने को याद करने लगता है। वक़्त इतना लंबा या बड़ा नहीं होता जितना उस वक़्त में किया गया काम होता है। वक़्त सिर्फ़ वक़्त होता है जिसमें इंसान अपने को महसूस करता है।

भागती-दौड़ती ज़िन्दगी में जब मैंने खुद को महसूस करना शुरू किया तब मैंने सोचा कि कुछ यादगार लमहों को बटोरकर अपने मित्रों में थोड़ा-थोड़ा बाँट दूँ। हो सकता है कि ये यादगार लमहे दूसरी ज़िन्दगियों में भी अपना स्थान बना पायें। मैंने अपने पूर्वजों से उनके पूर्वजों के बारे में जो कुछ भी सुना वो यह कि उन दिनों लड़कों तक को स्कूल-मदरसे जाने तक का मौका नहीं मिलता था। लड़कियों का तो राम ही मालिक था। लड़कियाँ या तो दादी-नानी के आँचल में ही दुबकी रहतीं या नए-पुराने पटोलों में लिपटी गुड़ियाओं से खेलती रहतीं। यदि होता तो गीता-रामायण पढ़कर पूरी ज़िन्दगी बस उपले थापते ज़िन्दगी गुज़ार देतीं। जब मैं टुकड़े-टुकड़े इन बातों को सुनती हूँ तो उन टुकड़ों को आने वाली पीढ़ी को सौंपना चाहती हूँ।

मेरा जन्म किसी ऐसे परिवार में नहीं हुआ जिसे बहुत नामी-गिरामी कहा जा सके। साधारण-सा ज़मींदाराना घराना था वो। उस घराने में ना तो कोई

राजनीतिज्ञ पैदा हुआ और ना ही कोई शिक्षाविद्, ना ही कोई पूँजीपति और ना ही कोई समाज-सुधारक ।

बच्चा जब बड़ा होता है तो उसके इर्द-गिर्द की दुनिया में इस तरह कुछ कड़वा-मीठा होता है कि उसमें वो चाहे जितना कुछ भूल जाए, पर अपने ददिहाल और ननिहाल को हमेशा अपने साथ-साथ समेटे रहता है । बात मैं ननिहाल से शुरू करती हूँ । मेरा ननिहाल एक छोटा-सा गाँव था । खजूरों के हरे-भरे पेड़, पीलुओं के घने झाड़, देशी और लाहौरी काँटेदार बेरियाँ, खेतों को स्पर्श करती कस्सियों (छोटी नदी) की लहरें आज भी मेरे मन में बसी हुई हैं । सब कुछ खुला-खुला और साफ़-सुथरा था । कच्ची-पक्की ईंटों से चिनाये गए घर का आँगन भी और बाहर भी लोगों के तन-मन की तरह बहुत उजले-उजले हुआ करते थे । घर के सदस्य तो क्या, घर का पड़ौस भी एक-दूसरे से जुड़ा रहता था । एक घर की छोटी-से-छोटी खुशी और बड़ी-से-बड़ी ग़मी गाँव-भर की खुशी और ग़मी बन जाया करती थी । इस तरह की साफ़-सुथरी दुनिया में मेरा ननिहाल बसा करता था । ननिहाल में नाना-नानी और उनके बच्चों की दादी ये प्राणी थे ।

जहाँ तक मुझे स्मरण पड़ता है; या मेरी माँ बताती हैं कि उनकी दादी तुनकमिज़ाज थीं । वैसे तो उस ज़माने में किसी महिला को यह हक़ नहीं दिया गया था कि वो अपनी भृकुटि टेढ़ी करे, लेकिन दादी, नानी बच्चों के साथ उलझी रहतीं । सीधी-सरल ज़िन्दगी होने के साथ घर का काम हमेशा बिखरा पड़ा रहता । वैसे काम था भी और नहीं भी । रसोई के नाम पर जितना प्रदर्शन आज होता है उसका सहस्रांश भी नहीं हुआ करता था । उस ज़माने का दिन बहुत जल्दी-जल्दी उतर आता था घर के कोने-कोने में । मुँह अँधेरे चक्की की घर्र-घर्र की आवाज़ में कबीर-मीरा के भजन गूँजते रहते । सूरज निकलने से पहले ही घर-भर की लिपाई-पुताई खत्म हो जाती और सूरज की पहली किरण के साथ ही शुद्ध घी का दीया जलाकर तुलसी माँ की आरती शुरू हो जाती ।

नाश्ते के नाम पर रात की बासी रोटी और ताज़ा मक्खन और छाछ का छन्ना । इसी के साथ ही घर की क्यारियों से उतरी सब्ज़ियों को उपले वाले चूल्हे पर चढ़ा दिया जाता । घर-भर की ढेर सारी रोटियाँ एक साथ सेंककर खजूर के पत्तों और कुशा से बनाये गए सुन्धड़े (डिब्बा) में भर दी जातीं ।

शाम के नाश्ते के नाम पर चने-चबेना और एक गिलास पानी । रात के खाने के नाम पर दाल के साथ फिर वही रोटियाँ । यदि कोई मेहमान आ जाता तो भुना पापड़, आम का अचार और खाने के बाद मिसरी घुला गाय का दूध । अँधेरा घिरते ही रात शुरू हो जाती और घर के छोटे-बड़े प्राणी चिड़ियों की तरह अपने-अपने घोंसलों में बंद हो जाया करते । वो ज़माना कम्पीटीशन का ज़माना नहीं था, इसलिए पढ़ाई-लिखाई को लेकर हाय-तौबा नहीं हुआ करती । जिसे जहाँ जगह मिलती वो वहीं समाने में संतुष्टि का अनुभव करता । कोई भी किसी को धकेलता नहीं था । हर आदमी अपने मुक़द्दर का खाता और अपने मुक़द्दर का शुक्रिया अदा करता ।

मेरे नाना संगीत के अध्यापक थे । संगीत उनका व्यसन नहीं था बल्कि रोज़ी-रोटी का ज़रिया था । हारमोनियम पर तैरती उनकी अंगुलियाँ स्कूल में स्वर के अलावा अनुशासन भी पैदा कर देतीं । गीत के बोल को पहले वो गाते और बाद में समवेत स्वर में स्कूल के लड़के । वे चाहते थे कि उनके परिवार के दूसरे लोग भी गीत-संगीत की बात करें । पर हर आदमी तो इस तरह की बात नहीं कर सकता ना !

मैं रोज़ी-रोटी की बात कर रही थी । उस ज़माने में मेरे नाना की तनख्वाह दस रुपये मासिक थी । और इसे बहुत बड़ी रक़म समझा जाता था । नाना के पास रहने के लिए एक छोटा-सा अपना घर था । इसलिए वे मौज से नौकरी करते और मौज में आकर नौकरी छोड़ देते । नौकरी छोड़ने के बाद वे या तो पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर अपने दोस्तों के साथ तम्बाकू पीते या ताश खेलते । ताश पत्तों के खेल से ऊबकर और अपनी माँ-पत्नी की बौछारों से तंग आकर नौकरी करने लगते । नौकरी से उनकी आँख-मिचौली ज़िन्दगी-भर चलती

रही । वे जब चाहते नौकरी छोड़ देते और अपनी गृहस्थी को भूखे पेट छोड़ देते । इसी तरह उनकी गृहस्थी में पंचम और सप्तम स्वर हमेशा सुनाई पड़ते रहते । उन दिनों लड़कियाँ ससुराल को ही अपना असली घर समझतीं इसलिए नानी ने कभी भी अपने मायके की ओर नहीं देखा । नानी की माँ और मामा दोनों ही सरल स्वभाव के थे और जब-तब पैसा, दो पैसा अपने भाँजे-भाँजियों को देते रहते । उनका चेहरा जब-जब भी मेरी आँखों के सामने आता है तो उस पर सिर्फ़ मुस्कान के फूल खिले रहते हैं ।

मेरी माँ भाई-बहनों में सबसे बड़ी हैं । उनमें बड़प्पन का इज़हार हमेशा रहा है । यह आश्चर्य की बात है कि उन्हें पढ़ाई-लिखाई में बेहद रुचि रही और उन्होंने उस ज़माने में हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी भाषाएँ अच्छी तरह से सीख ली थीं । उन्होंने आठवीं तक पढ़ाई की थी और इस पढ़ाई की चर्चा दूसरे कई गाँवों तक में फैल गई थी । वे सुन्दर तो हैं ही, सुरुचिसम्पन्न भी हैं । भोजन बनाना और प्यार से खिलाना उनकी विशेषता है । नाना की बात करते समय अपनी निश्छल और स्नेही नानी की याद हमेशा मेरी आँखों में बसी रहती है । यदि मैं निष्पक्ष होकर कहूँ तो कह सकती हूँ कि नानी जितनी परोपकारी और आत्मीय रहीं नाना उतने ही स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित रहे । नाना ने यदि अर्थाभाव की तलवार पूरी गृहस्थी पर लटकाये रखी तो नानी ने घोर सूखे में अपनी गृहस्थी का रुतबा बनाये रखा ।

मेरे नाना और पिता का एक ही नाम था, वह था गणेशदास । उन दिनों नामकरण को लेकर माथापच्ची नहीं की जाती थी । देवी-देवता, नदी-तालाब आदि के नामों पर नामकरण संस्कार कर दिया जाता था । ज़्यादा होता तो देवी-देवताओं के नाम के बाद दास, लाल, प्रकाश, बाई, देवी लगाकर काम चला लिया जाता और लड़के-लड़कियाँ इसी में खुश हो जाया करते । इसलिए मेरी नानी का नाम रामदेवी और दादी का नाम नानकी बाई और माँ का नाम हुकमदेवी हैं । नानी के साथ मेरा गहरा लगाव रहा । 'नानी के घर जाएँगे मोटा होकर आएँगे' आज भी मेरे कर्णकुंजों में गूँजता रहता है । मैं यह तो नहीं

जानती कि नानी के घर जाकर मैं कितनी मोटी होकर लौटी, पर इतना ज़रूर जानती हूँ कि ननिहाल से लौटते वक़्त पापड़, बड़ियाँ, सूखी खजूर, मिर्च-मसालों में डूबे कई तरह के अचार, नानी की आँखों से झरती आँसुओं की बूँदें और भौंहों को छूता उनका आँचल हमेशा मेरे साथ रहता। यह सब मुझे ताज़गी देता है और देता है यादों को याद रखने की ताक़त। जब-जब भी मैं आकाश में पूर्णिमा के चाँद को देखती हूँ तो मुझे लगता है कि मेरे मामा भी मुझसे उतनी ही दूर हैं जितनी दूर धरती से चाँद।

ननिहाल की बात यहीं छोड़कर अब मैं ददिहाल की ओर चलती हूँ। मुलतान प्रांत के ज़िला मुज़फ़्फ़रगढ़ और तहसील कोट अद्दू। यह तहसील भी बहुत छोटी है। कुल जमा पाँच-सात सौ घर, रेत के टिब्बे और दो-चार बाज़ार। इसी तहसील का वासी है मेरा ददिहाल। मेरे दादा भोलाराम अपने माता-पिता की इकलौती संतान थे। उनके भोले स्वभाव के कारण ही उन्हें यह नाम दे दिया गया था। कुछ खेत और दो एकड़ वाली हवेली के इकलौते वारिस थे वे। मेरी दादी नानकी बाई बहुत ही सरल और स्नेहिल थीं। दादा के साथ मिलकर उन्होंने गृहस्थी की गाड़ी को ख़ूबसूरती से चलाये रखा। उनका दिन भी सुबह चार बजे शुरू हो जाता। दादा की अकालमृत्यु से दादी को ज़िन्दगी से जूझना पड़ा। ज़मींदार परिवार की बेटी और बहू के रूप में उन्होंने हर मर्यादा का निर्वाह किया। उस समय मेरे पिता किशोर ही थे। अपने पिता की सरलता की क़ीमत उन्हें चुकानी पड़ी। उस समय माता और पुत्र ने सूझ-बूझ से काम लिया और कुछ स्वर्णाभूषणों के सहारे मेरे पिता लाहौर की तरफ़ रोज़ी-रोटी की तलाश में निकल पड़े। उन दिनों यात्रा संकटों से भरी रहती थी। लोग अक्सर पैदल या फिर बैलगाड़ियों के सहारे आया-जाया करते थे। यूँ तो हर यात्री को अपनी सुरक्षा ख़ुद करनी पड़ती है। मेरे पिता को निपट अकेले होने के कारण और भी ज़्यादा सावधान रहने की ज़रूरत थी।

पता नहीं ईश्वर को क्या मंजूर रहा होगा कि वे जहाँ-जहाँ भी जाते क़िस्मत उनका साथ देती। उनका पहला पड़ाव लाहौर था। वह लाहौर, जिसे पेरिस

का दूसरा रूप कहा जाता है । उस चकाचौंध वाली दुनिया में मेरे पिता तीन रुपये मासिक कमा लिया करते थे । डेढ़ रुपया हर महीने अपनी माँ को भेजते और डेढ़ रुपये में खुद गुज़ारा करते । छोटी-सी उम्र में ही उन्होंने अपने को साध लिया था । यही कारण है कि आने वाले वर्षों के हर आँधी-पानी को वे झेल सके । उनकी सफलता का श्रेय उनकी माँ को जाता है । धीरे-धीरे वे संपन्न होते गये । मेरे पिता की एक छोटी बहन थीं, जिनका नाम था रामप्यारी । अपने सगय की अनिंद्य सौन्दर्य-सम्पन्न गौरांगी बुआ । उनका व्यक्तित्व एक सक्षम व्यक्तित्व था । जीवन के हर मोड़ पर वे अपना सिक्का जमाये रहीं । सौन्दर्य व स्वाभिमान की जीती-जागती मिसाल थीं वे । ना जाने उन्हें क्या सूझा कि ऐबटाबाद में जन्मी, पली-बढ़ी हुकमदेवी को अपनी पलकों पर बैठाकर अपनी हवेली में लाने का निर्णय कर बैठीं ।

हर तरह की मिन्नत-खुशामद के बाद मेरे नाना इस बात के लिए तैयार हुए । अपने समय की रूपसी किशोरी हुकमदेवी (मेरी माँ) कोट अद्दू की हवेली में बहू बनकर आ गईं ।

वह हवेली रेत के टिब्बे पर बसी हुई थी । ढेर सारे छोटे-छोटे शंख और ढेर सारी छोटी-छोटी सीपियाँ अपने दिल में समाये रेत का वह दरिया बहुत दूर तक जाता था । सूरज की आँख खोलते और मूँदते वक़्त गर्म रेत ठंडी होने लगती और रात-भर चाँद की चाँदनी को अपनी बाँहों में समेटे रहती । सुबह-शाम बालक-बालिकाओं के झुण्ड कुलाँचें भरते रहते । सच कहा जाए तो वह रेत का दरिया सभी के लिए सैरगाह था । उसकी रेत ना कम होती और ना बढ़ती । कहा जाता है, कभी रेत का वह दरिया आटे का दरिया था । अपनी-अपनी ज़रूरत के अनुसार लोग सुबह-शाम आटा ले आते और रोटियाँ बनाते । एक बार किसी महिला ने दोनों समय का आटा इकट्ठा उठा लिया और सोचा कि बार-बार कौन आए-जाए । घर आकर उसने देखा कि वह आटा रेत बन गया है । उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ । घर से बाहर निकलकर उसने देखा कि आटे का वो दरिया रेत में बदल चुका है । उसने

बार-बार उलटा-पलटा, लेकिन रेत को आटा नहीं बनना था । तेज़ हवा का झोंका आया और उससे बोला कि लालच बुरी बला है । तुम्हारे लालची मन ने गाँव-भर की रोटी छीन ली है । बाद में वहाँ सिर्फ़ सन्नाटा रह गया और रह गये उस महिला के पश्चात्तापी आँसू ।

रेत के उस दरिया पर टिकी थी वह बड़ी-सी हवेली । एक लम्बा गलियारा, गलियारे से सटा बड़ा-सा आँगन । आँगन को घेरे पाँच-सात कमरे । आँगन के उस पार सब्ज़ियों की क्यारियों को सींचता हैंडपम्प और गाय-बछड़ों से भरी एक गऊशाला । आँगन के दाहिने सेवक-सहायकों के छोटे-बड़े कमरे और बायें भोजनशाला ।

अब उस परिवार में तीन प्राणी हो गये थे । एक दादी, पिता और माँ । मेरी इकलौती स्वाभिमानी बुआ अपने घर में रहतीं और कभी-कभार एक-आध घंटे को मायके आतीं । मेरी दादी अपने समय में बहुत सुन्दर रही होंगी । उनका क़द लंबा था । वाणी से सरल हृदय के नपे-तुले बोल निकलते । उन्होंने गृहस्थी की बागडोर को कभी ढीला नहीं छोड़ा, इसलिए सब कुछ संतुलित चलता रहा । उन्हें कई बार कई तरह के उतार-चढ़ाव देखने पड़े । उनमें ग़ज़ब का धीरज था । घर की प्रतिष्ठा को उन्होंने हमेशा बनाए रखा ।

मेरे दादा बहुत सरल रहे होंगे । इसी सरलता में वे अपनी ज़मींदारी गँवा बैठे । मेरे पिता को कम उम्र में रोज़ी-रोटी के लिए लाहौर की तरफ़ जाना पड़ा । विपत्ति के क्षणों में जब अपनी छाया भी साथ छोड़ देती है तब दादी ने स्वर्णभूषणों को दाँव पर लगाकर कुछ रुपये जुटाये जिससे मेरे पिता ने कारोबार शुरू किया । फ़ाक़ामस्ती के बाद जब उन्होंने एक महीने में तीन रुपये कमाये तब वे बहुत खुश हुए । माँ के आशीर्वाद से मेरे पिता जी का काम धीरे-धीरे अपने पैर जमाने लगा । कई तरह के पापड़ बेलने के बाद मेरे पिता ने गिलास का काम शुरू किया । शीशे से उनकी गहरी दोस्ती हो गई और यह दोस्ती अन्त तक चली ।

कहने की ज़रूरत नहीं कि घर का खाना बहुत सात्त्विक हुआ करता था ।

तब उपले-चूल्हे का ज़माना था। सरसों के कड़वे-मीठे तेल से भरा मिट्टी का दीया घर की शोभा बढ़ाया करता। घर के सभी लोग साफ़गो थे इसलिए मनमुटाव की गुंजाइश नहीं रहती थी। सभी प्यार से रहते और एक-दूसरे का आदर करते।

उन दिनों आज़ादी प्राप्त करने का जोश था और स्वामी दयानन्द की कृपा से नारी जागृति अपनी जड़ें फैला चुकी थी। विदेशी वस्त्रों की होली जलाने, खादी पहनने, चरखा कातने और नमक बनाने में लोगों की गहरी आस्था थी। उस छोटे से गाँव में भी लोग ये जानने लगे थे कि किसी-न-किसी तरह हिन्दुस्तान को आज़ादी मिलेगी ही। मेरी बुआ रामप्यारी वहाँ की लीडर थीं और घर-घर जाकर विदेशी वस्त्र निकलवा उनकी होली जलातीं। माँ और बुआ दोनों मिलकर राष्ट्रीय गीत गातीं। उनमें से जो गीत मुझे याद है वो गांधी और उनके चरखे से सम्बन्धित गीत है—

कत्तो नी गांधी दा चरखा,
वाह-वाह नी रंगीला चरखा।

उन दिनों गांधी जी के साथ टोपी और पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ वास्केट (जैकेट) का सम्बन्ध पूरी तरह जुड़ गया था। इस तरह उस गाँव में चरखा ज़रूरी हो गया था। यूँ तो सभी घरों में सब लोग चरखा कातते। हमारे घर में जब तक कुछ पूनियाँ न काती जातीं तब तक घर का कोई भी सदस्य अन्न-जल ग्रहण न करता। इस प्रकार खादी ने चरखे के द्वार से हमारे घर में प्रवेश किया। घर के सभी लोग खादी पहनने में गौरव का अनुभव करते। इसका प्रभाव आसपास के घरों में भी बढ़ने लगा। गाँव के सभी लोग चरखा कातने लगे और बहुएँ-बेटियाँ विदेशी कपड़ों की होली जलाने लगीं। सामूहिक कताई के आयोजन किए जाते (इंक़लाब ज़िन्दाबाद के नारे लगाए जाते)। जो महिलाएँ बाहर नहीं निकल पातीं वे घर के आँगन में कताई किया करतीं। चरखे की हत्थी में लकड़ी की रंग-बिरंगी चूड़ियाँ डाल दी जातीं। चलती चक्की को देखकर भले ही सन्त कबीरदास रो दिए हों, पर चलते चरखे की छनन-छनन

सुनकर किसी नवविवाहिता का लाज-भरा सौंदर्य सामने आ जाया करता था। चलते सूरज की किरणों से यदि वक़्त का अन्दाज़ा लगाया जा सकता था तो चलते चरखे से ये भी अन्दाज़ा लगाया जा सकता था कि अब आज़ादी मिलने वाली है। समय-समय पर नेताओं के आगमन से लोगों के हाथों में तिरंगे लहराने लगते। गांधी जी के स्वतंत्रता अभियान में जिससे जो बन पड़ता पूरे तन-मन से जुट जाता। अनाज, कपड़ा, रुपया-पैसा देखते ही देखते न्यौछावर हो जाता। मुझे याद है कि रेलगाड़ी के तीसरे दर्जे के डिब्बे में मैंने भी चाँदी का एक सिक्का गांधी जी के हाथों में थमा दिया था और उन्होंने मुझे आशीर्वादी स्नान से नहला दिया था।

इस तरह सब कुछ अपनी रफ़्तार से चल रहा था। आज़ादी से भी ज़्यादा सम्मान अपने आसपास को दिया जाता था। आँखमिचौली करती प्रकृति से लोगों का गहरा रिश्ता था। अपने मुख में ग्रास डालने से पहले यह देख लिया जाता कि दूसरा पेट कहीं खाली तो नहीं है। वो इलाक़ा गरमी और लू के भयंकर थपेड़े खाने वाला इलाक़ा था। बिजली की भी सुविधा नहीं थी। गोधूलि के समय घोंसलों को लौटते परिन्दों की तरह लोग अपने घर लौट जाते।

अँधेरा होने से पहले शाम का खाना ख़त्म हो जाता। उपलों वाली आँच के इर्द-गिर्द घर के सभी सदस्य जमावड़ा करते सुख-दुःख की बातें करते और आत्मीयता की दुनिया में खो जाते और होता तो आँखों में सारी रात काट देते। शायद यही कारण है कि ख़ून के रिश्ते के भी परिवार मन के रिश्तों में इस कदर बन जाते कि उनकी डोरी को ढीला करना असम्भव हो जाता। गुरु ग्रन्थ साहिब, जपजी साहिब और रामचरितमानस की गूँज को हर भोर अपने भीतर समेट लेती। इस तरह वक़्त का यह चक्र भी चलता रहता।

मेरे घर के बाहर बिछी रेत की चादर में से कोई लम्हा ऐसा भी होता जो फुदकते-फुदकते स्टेशन तक जा पहुँचता। दो सवारी गाड़ियाँ और दो माल-गाड़ियाँ रेल की पटरियों पर आया-जाया करतीं। इन दिनों कुएँ ही पानी लाने का एकमात्र साधन हुआ करते थे।

मेरे पिता ने अपने कुछ कर्मचारियों को हिदायत दे रखी थी कि वे एक-एक लोटा और एक-एक पानी की बालटी लेकर स्टेशन पर जाएँ और रेलगाड़ी में सवार हर यात्री को पानी पिलाएँ। रेलगाड़ी तब तक स्टेशन पर रुकी रहती जब तक सभी यात्री पानी न पी लेते। मुलतान से सक्खर की ओर आने-जाने वाला हर यात्री बेताबी से कोट अद्दू स्टेशन के आने का इंतज़ार करता कि वहाँ पानी मिलेगा। सभी यात्री तहेदिल से मेरे पिता को आशीर्वाद देते। यही कारण है कि जीवन के घोर सूखे में उन्हें स्नेह-जल की कभी कमी नहीं रही।

यह वक़्त का चक्र था या कि चरखे का चक्र था मैं नहीं जानती, पर इतना ज़रूर जानती हूँ कि मेरे पिता लाहौर जाकर पूरी तरह बस गये और मेरी दादी गाँव की होकर रह गईं। वे परम तुष्टि का अनुभव करतीं कि उनका इकलौता बेटा कोई बड़ा काम करने के लिए दूर चला गया है।

मन की दूरी न हो तो तन की दूरी की क्या बिसात! इस तरह रोज़ी-रोटी ने माँ-बेटों को अलग-अलग छोरों पर जा बिठाया। मेरे पिता ने लाहौर के प्रसिद्ध अनारकली बाज़ार में एक छोटा-मोटा घर किराये पर ले लिया था। वही अनारकली बाज़ार, जिसकी तुलना पेरिस के ख़ूबसूरत बाज़ारों से की जाती है और वही अनारकली, जिसकी मोहब्बत ने सम्राट् अकबर की नींद उड़ा दी थी। मैं जब-जब भी विश्व के ख़ूबसूरत बाज़ारों में जाती हूँ मुझे अनारकली बाज़ार की याद झकझोरने लगती है।

इसी बाज़ार के किसी एक लकड़ी की सीढ़ियों वाले घर में मेरा जन्म हुआ था। यूँ तो आज भी कन्या के जन्म पर प्रसन्नता व्यक्त नहीं की जाती। उस ज़माने की तो बात ही क्या, जब कन्या-जन्म के समाचार से सबके चेहरे लटक जाया करते हों और छन्ना बजाने वालों को लौटा दिया जाता हो, तब बेटी के जन्म पर कोई बताशे बाँटे तो उसकी मति को भ्रष्ट न माना जाए तो क्या किया जाए। मैंने सुना, मेरे जन्म पर मेरे बाबा इतने ख़ुश हुए कि उन्होंने हर घर में बताशों के दोने बाँटे थे। मेरे बाबा बहुत कम समय तक जीवित रहे, नहीं

तो मैं उनसे बताशे-भरे दोनों पर लम्बे समय तक बतियाती रहती, ख़ैर !

मैं सतमाही पैदा हुई थी । सबने यही सोचा कि दो-चार साँस लेने के बाद मैं इस दुनिया से चली जाऊँगी, पर ऐसा नहीं हुआ । हर सुबह मुझे जीवित देखने पर सबको हैरत होती । मैंने सुना कि मुझे कपास के फाहों में यूँ ही डाल दिया जाता । कपास के फाहे से ही दूध की दो-चार बूँदें मेरे गले में गटका दी जातीं । किसी चाबी वाली गुड़िया के वस्त्र मुझे पहना दिये जाते और तुलसी जी के साये में मुझे लिटा दिया जाता । मेरी छोटी-छोटी आँखों ने निश्चित ही सूरज के घोड़ों को आते-जाते देखा होगा और चंदा मामा के बूर वाले पुओं को भी । मेरी पतली-पतली उँगलियों वाली मुट्ठियों ने ज़रूर किसी चाँद वाली राजकुमारी को थामने की कोशिश की होगी, क्योंकि इस धराधाम के प्राणी मुझे अपनी बाँहों में झुलाने से डरते थे कि मेरी आने वाली साँस आखिरी साँस न बन जाये । शायद धरती और आकाश का यह रिश्ता आज भी मुझे अपनी लम्बी बाँहों में समेटे हुए है । यही कारण है कि मैं भोर के पीले गुब्बारों और साँझ के सतरंगी झुनझुने बजाने को मचल उठती ।

मुझे अच्छी तरह याद है कि मैं आकाश के पार चले जाने वाले साँझ के रंगों को देखा करती । वायुयान की खिड़की से जब भी मैं सूर्योदय और सूर्यास्त की रंग-बिरंगी चादरों को आकाश में फैलते देखती हूँ तो यह सोचती हूँ कि धरती पर ये चादरें मेरे पास क्यों नहीं हैं । मैंने यह भी सुना कि एक बार रावी नदी के तट पर मुझे देखने के लिए स्नानार्थियों में होड़ लग गई कि मैं जीती-जागती रोने वाली गुड़िया हूँ ।

पता नहीं क्या सोचकर मुझे राजकुमारी नाम दे दिया गया । मेरे लिए न तो चाँदी का पालना था और न सोने का चम्मच । न सोने के फूलों वाली चाँदी की डालियों वाला पेड़ था जिस पर मैं झूला झूलूँ । मेरे इर्द-गिर्द न तो मखमली लिबास था और न ही ईरानी क़ालीन । न दास-दासियों का हुजूम था और न ही रंग-बिरंगी तितलियों-सा सखियों का झुंड । नाम देना था इसलिए दे दिया गया । मैं भले ही यह न पूछ पाई हूँ इस नाम के बारे में, पर इतना ज़रूर

है कि यह नाम मेरे लिए चुनौतीपूर्ण बना रहा और मैं बराबर इन चुनौतियों का सामना करती रही ।

उस ज़माने की जैसी भी शिक्षा थी मेरे लिए भी वैसी ही रही । चिकनी मिट्टी से पोती गई तख़्ती, सरकंडे की क़लम और बादाम के छिलकों और गुड़ से काली स्याही और स्याही के साथ-साथ मिट्टी की छोटी-सी दवात । काली स्याही में डूबी क़लम से पटिया पर उकेरा गया पौंड, शिलिंग, पैन्स और रुपये, आने, पाई वाला गणित और गाया जाने वाला ककीहारा मुझे आज भी मुँहज़बानी याद है । यह भी याद है कि उस हवेली की राजकुमारी अपने मन के पन्नों पर कहा-अनकहा सब कुछ लिखने लगी थी । यूँ तो लड़कियों को खिलौने से खेलने का अधिकार नहीं दिया गया, लेकिन मैं अपने ननिहाल में खजूर की गुठलियों से ज़मीन पर कुछ चौसर-सा खेलती और ददिहाल में मन होता तो दादी के बक्से में छिपी अशरफियाँ निकाल मंत्रमुग्ध भाव से देखकर यथास्थान रख देती । मेरा मन न तो चिमटा पकड़ने में लगता था और न ही चकला-बेलन की कलाबाज़ियों को देख ख़ुश हुआ करता था । मैं यूँ ही कभी रेत का बहता दरिया देखती रहती और कभी सितारों को गिनने की कोशिश करती रहती । कभी यह नहीं चाहा कि कोई मेरे लिए दूर-दराज से सितारे तोड़कर लाए । मैंने हमेशा यह चाहा कि मेरी आँखों में कशिश होगी तो ये सितारे ख़ुद-ब-ख़ुद मेरी आँखों में आकर बस जाएँगे ।

मैं स्कूल इसलिए जाती थी कि मुझे जाना होता था । मुझे अच्छी तरह याद है कि अव्वल आने पर मुझे ज़्यादा ख़ुशी नहीं होती थी । मेरी दो-चार संग-सहेलियों के अलावा किसी से गहरी दोस्ती नहीं थी । मैं आज भी नहीं समझ पाई कि मैं इतनी आत्मकेन्द्रित क्यों हूँ कि सबके बीच बैठकर अचानक कहीं क्यों खो जाती हूँ ।

इस तरह मेरी जैसी सतमाही कन्या शिशु का चार वर्ष का सफ़र पूरा हुआ । पाँचवें तक आते-आते जमा, घटा, गुणा, भाग वाला गणित और हिन्दी, अंग्रेज़ी और पंजाबी की वर्णमाला मेरी उँगलियों पर बख़ूबी निवास करने

लगे । उधर मेरे पिता के व्यापार में वृद्धि होने लगी और उन्होंने गुवाल मंडी (निस्बत रोड) में एक मकान खरीद लिया था । इन्हीं दिनों मेरे पिता का परिचय एक ऐसे सन्त से हुआ जो वास्तव में ही पूर्ण सन्त थे । नाम था प्रभु आश्रित । पिता के जन्मजात धार्मिक संस्कारों पर उनका इतना गहरा रंग चढ़ा कि वह आज तक नहीं छूटा । इन्हीं दिनों मेरे भाई का जन्म हुआ जिसे दर्शनकुमार नाम दे दिया गया । यह नाम मेरे माता-पिता और परिवार की धार्मिक प्रवृत्ति का प्रतीक है । दर्शन तो किसी का भी हो सकता है । कोई भी कर सकता है । सूर्य दर्शन, देव दर्शन, गुरु दर्शन, पुष्प दर्शन आदि-इत्यादि । यह सोचकर भाई को यह नाम दिया गया कि वह ईश्वर के दर्शन करेगा । ईश्वर जैसे सूक्ष्म और निराकार का प्रत्यक्ष दर्शन कैसे किया जा सकता है, वह तत्त्व तो अनुभव रूप है । मैं सोचती हूँ कि जब-जब उसने करुणार्थ हो किसी ज़रूरतमंद को निहारा होगा उसके हृदय में तत्काल ईश्वर ने निवास कर लिया होगा । उसकी उपस्थिति से जब-जब भी किसी के तन-मन में आनन्दगंगा बही होगी उस समय ईश्वर उसके हृदय-आसन पर प्रतिष्ठित हुआ होगा । ईश्वर का निवास आज तक भी दर्शनकुमार के मन में बना हुआ है ।

मुझे याद नहीं पड़ता कि हम दोनों में कभी तकरार की बात उठी हो । हम दोनों के बचपन आँखमिचौली करते, गाते-गुनगुनाते इस तरह गुज़र गये कि किसी को पता ही नहीं चला । लड़का होने की वजह से उसे थोड़ी-सी स्वतंत्रता अनायास मिल गई जो मुझे सतत संघर्ष के बाद प्राप्त हुई । वह अक्सर शाम के समय टहलने, गुल्ली-डंडा खेलने और कंचों की दुनिया में खो जाता । उसके हृदय की गहराई बाद में सोने में सुहागे का काम करती ।

महात्मा प्रभु आश्रित के सान्निध्य से परिवार के हर व्यक्ति की आस्था यज्ञ और गायत्री में प्रगाढ़तर होती गई जिसका प्रभाव पिताजी के कामकाजी जीवन पर भी स्पष्ट दिखाई देने लगा । वे ऐसे किसी भी व्यक्ति को अपने उद्योग में नौकरी नहीं देते थे जो मांस, मदिरा और धूम्रपान करता हो । उनकी पहली शर्त थी कि इन व्यसनों को सदा-सर्वदा के लिए छोड़ देना । बिना नमस्ते, अभिवादन

के घर के किसी भी सदस्य को पानी नहीं मिलता । इन्हीं दिनों चन्दन के यज्ञ से कोट अद्दू की यज्ञशाला में अग्नि प्रतिष्ठित की गई जो लाहौर की यात्रा करती हुई दिल्ली के प्रयाग निकेतन में वास कर प्रीत विहार की चार पीढ़ियों पर प्रभुत्व जमा सकी । जहाँ अभिवादन के आदान-प्रदान और अग्निहोत्र के बिना अन्न-ग्रहण वर्जित हो उस स्थान को प्रणम्य के बिना क्या कहा जा सकता है । मेरे पिता अद्भुत वक्ता थे और उनकी वाणी में ग़ज़ब का जोशीला प्रभाव था । वे अपने पूर्वजों के बहुत-से क़िस्से शब्दों द्वारा साक्षात कर देते थे । शहीद भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की शहीदी दास्तान जब उनके आर्द्र गह्वर से फूटती तो श्रोताओं के नेत्रों से गंगा-यमुना बहने लगती । उन्होंने बताया कि रावी नदी के तट पर जब उनकी देहों पर मिट्टी का तेल छिड़ककर उन्हें जलाने की कोशिश की गई तो पूरा लाहौर उस नदी पर उमड़ पड़ा और लोगों के एक-एक आँसू ने उस नदी को भिगो दिया । 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद' और 'ये शहीद अमर रहें' के नारों ने आसमान को अपनी बाँहों में भर लिया । वे बताते हैं कि जनता के आक्रोश से भयाक्रांत अंग्रेज़ कई दिनों तक अपने खेमों से बाहर नहीं निकले । उनकी आवाज़ कहती है, इसने उन शहीदों को अपनी आँखों से देखा है जो हँसते-खेलते फाँसी के फन्दों पर लटक गये थे ।

रेत के दरिया पर मैंने जिन सखियों के साथ काग़ज़ की नाव में चप्पू चलाए हैं, लुकन-छिपाई खेली है, गुड़ियों के ब्याह रचाए हैं वे बहुत पीछे छूट चुकी हैं और उनकी मस्तीभरी अदाएँ जब-तब मेरे मन के झरोखों से झाँकती रहती हैं । उनमें से कोई चाँदी के झूले में बैठकर सोने के चम्मच से खाना खाती है, कोई वहीं ज़मींदाराना वतन में छूटकर मुसलमान बन गई है और किसी ने डर के मारे कुएँ में कूदकर जान दे दी है और किसी ने सिर्फ़ संघर्ष ही संघर्ष में साँस ली है । उनका वर्णन करने लगूँ तो पन्ने के पन्ने भर जाएँगे और उनके बारे में जानने को कोई उत्सुक भी नहीं होगा । खैर !

मैं अपने माता-पिता व छोटे भाई के साथ विभाजन के समय दिल्ली चली आई थी । जब हमारा जहाज़ सफ़दरजंग हवाई अड्डे के आकाश पर पहुँचा तो

दिल्ली बिजली के लट्टुओं की माला पहने दुल्हन-सी लग रही थी। जब हवाई अड्डे से बाहर निकले तो दिल्ली ख़ौफ़नाक वातावरण में साँस ले रही थी। मुझे लगा कि मेरा लाहौर बहुत पीछे छूट चुका है। मेरी ब्याहने लायक गुड़िया आग के दरिया में अपना दम तोड़ चुकी है। पिता को 'गणेसा' कहकर पुकारने वाली दादी माँ भी बहुत पीछे छूट चुकी हैं।

हमने बुआजी के घर को बसेरा बनाया। चार आने का ग्लूकोज़ बिस्कुट का पैकेट और दो रुपये की रूहअफ़ज़ा की बोतल से शर्बत पिया। राशन पर ख़रीदा कपड़ा पहना। सबसे पहले पिताजी ने ए०आर० दत्त फ़ोटोग्राफ़र का घर किराये पर लिया। चार कमरों का मकान दो सौ रुपये में। उन दिनों दो सौ रुपये भी बहुत हुआ करते थे। दूसरा काम उन्होंने यह किया कि सरदार पटेल से कई बार मिल अपने हमवतनों के लिए रेलगाड़ियाँ चलवाईं ताकि वे हिन्दुस्तान आकर भय की छाया से मुक्त हो सकें। और वे सभी पानीपत, सोनीपत, करनाल और किंग्ज़वे कैम्पों में आ बसे। सभी अपनों-अपनों को ढूँढ़ने लगे। पिताजी के यहाँ ज़्यादातर लोगों ने रैन बसेरा किया। बड़ी-बड़ी दरियाँ कमरों में बिछा दी जातीं। सुबह-सवेरे परिन्दों की तरह वे रोज़ी-रोटी की तलाश में निकल जाते और साँझ ढले जहाज़ के पंछी की तरह घरनुमा जहाज़ पर लौट आते। माँ खाने की व्यवस्था देखतीं, दादी जड़ी-बूटियों से दवा बनाकर रोगों का उपचार करतीं। उन्होंने किसी तरह की हिकमत नहीं सीखी थी, पर उनके हाथ में इतनी शक्ति थी कि रोगी भला-चंगा हो जाता। वे मिट्टी का लेप करतीं और दूध में घी डालकर पीने का आग्रह करतीं।

पिताजी बहुत अनुशासनप्रिय थे और हम सभी उनके द्वारा खींची गई रेखा को लाँघ नहीं सकते थे। वे सफ़ाईपसन्द थे। कोट अद्दू में भी अपने तहत कर्मियों से गाँव-भर की हफ़्तावार सफ़ाई करवाते थे। दिल्ली में भी वे तिनके तक को इधर से उधर उड़ने की इजाज़त नहीं देते थे, इनसान की तो दूर की बात !

उनके आने से पहले ही पूरा घर व्यवस्थित हो जाता। हर वस्तु इस कदर

यथास्थान होती कि अँधेरे में भी मिल जाती । उस समय पिताजी ज़िंदगी के चौराहे पर खड़े थे । बसा-बसाया घर-कारोबार पाकिस्तान में छूट गया था । नये सिरे से ज़िंदगी शुरू करनी थी उन्हें । वे मलकागंज से कुतुब रोड तक दुकान पर जाते । आधा रास्ता पैदल-पैदल चलते और आधा रास्ता लाहौरी-पिशौरी ताँगे की सवारी करते । जितनी मेहनत से पिताजी ने बाहर सँभाला उससे भी ज़्यादा मेहनत से माँ ने घर सँभाला । कम पैसों में गृहस्थी और मेहमानों की ख़ातिरदारी आसान नहीं होती ।

उन दिनों पिताजी ने बैंग्लो रोड पर ज़मीन ख़रीद उस पर बहुत ख़ूबसूरत और पुख़्ता घर बनवाया । भूमि को गुरुदेव प्रभु आश्रित जी को दिखाया । जैसे ही वे आसन पर बैठे तुरंत समाधिस्थ हो गये । उन्होंने यह भविष्यवाणी की थी कि इस घर में साधु-संतों-महात्माओं का आगमन होता रहेगा । उस घर को नाम दिया गया प्रयाग निकेतन । गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम । मुझे अच्छी तरह याद है कि दत्त साहब के मकान से लेकर प्रयाग निकेतन तक पिताजी यज्ञ की अग्नि थामे, खड़ताल बजाते, गायत्री का कीर्तन करते अपने इष्ट-मित्रों तक आये थे । उस अग्नि को यज्ञशाला में प्रतिष्ठित कर दिया गया था जिसे वे लाहौर से लाये थे ।

इस तरह अग्नि-प्रतिष्ठा के साथ ही घर की गृहस्थी शुरू हुई । पिताजी ने घर में मित्रों को भी छोटा-मोटा बसेरा प्रदान किया । कुल जमा तीन कमरों के मकान में दर्जनों सम्बन्धी रहते । बिजली-पानी की व्यवस्था तो थी, लेकिन पंखा नहीं था । जब पहली बार एक कमरे में किसी तरह पंखे का जुगाड़ किया गया तो पिताजी ने इष्ट-मित्रों को बुलाकर पंखे के नीचे बैठाया । सबने मिलकर रूहअफ़्ज़ा पिया ।

उन दिनों खाना दो ही बार बनता था । सुबह और शाम । पिताजी के घर लौटने से पहले घर की बहू-बेटियाँ अपना-अपना आँचल सँभालने लगतीं । घर का वातावरण अनुशासनबद्ध रहता । उनकी आज्ञा के बिना पत्ता तक न हिलता । प्रयाग निकेतन में सैकड़ों यज्ञ हुए, हज़ारों प्रवचन हुए और साधु-संतों

का मेला लगा रहा । स्वामी वेदानन्द, पंडित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, महात्मा आनन्द स्वामी, विद्यानन्द विदेह से लेकर स्वामी दीक्षानन्द तक सभी ने उस घर को पवित्र किया । पीत वस्त्र धार लोग व्रती बनने को लालायित रहते । मौन व्रत धारते, गायत्री जाप में खाना पकाते, परोसते और खाते, जिसे लंगर नाम दिया जाता था । गुरुदेव की वाणी और व्यक्तित्व में चुम्बकीय आकर्षण था । उनके सान्निध्य में आकर पिताजी ने जहाँ गायत्री जाप के कई अनुष्ठान किए वहाँ 'ओ३म्' नाम का कीर्तन भी किया । यज्ञ से पहले 'ओ३म् ही ओ३म्' और उसके बाद 'यज्ञ रूप प्रभु हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए' से आकाश गूँज उठता । इस प्रकार उनके हृदय की पवित्र आवाज़ आकाश के नाना द्वारों को छू लेती ।

इसी प्रयाग निकेतन में पिताजी ने कई उतार-चढ़ाव देखे । घर में तीन विवाह हुए । बड़े भाई हरिदत्त, मेरा और छोटे भाई दर्शनकुमार का । स्वाभिमानी और स्वेच्छाचारी होने से पिताजी ने जहाँ परिवार को अनुशासन की रस्सी में बाँधे रखा वहाँ उसे सांस्कृतिक और शिष्ट परिवेश दिया । वे पैसे और वक़्त दोनों की क़ीमत जानते थे । इसलिए सोच-समझकर ख़र्च करते । उनके आने-जाने से घड़ियाँ मिलाई जातीं । उनकी ज़िंदगी घड़ी की सुई के साथ-साथ चलती थी । वक़्त की ख़िलाफ़त से उन्हें बेहद गुस्सा आता । इसलिए न केवल परिवार में, बल्कि व्यावसायिक दुनिया में भी उनकी वक़्त-पाबन्दी की अलग पहचान थी । कभी-कभी वे देरी से आने वाले को घड़ी उतारने की सलाह देते, क्योंकि जो व्यक्ति समय की क़ीमत नहीं जानता उसे घड़ी पहनने का कोई अधिकार नहीं है ।

आज जब मैं उनके व्यक्तित्व को पहचानने की कोशिश करती हूँ तो मुझे लगता है कि वे वज्र से भी ज़्यादा कठोर और पुष्प से भी ज़्यादा कोमल थे । उनके दिल में ममता का दरिया बहता रहता जिसके तट पर बैठ हज़ारों लोगों ने शीतलता का अनुभव किया । सभी परिचित-अपरिचित उनका सान्निध्य प्राप्त करने को लालायित रहते ।

एक ओर वे व्यवसाय में ऊँचाइयाँ छूने लगे और दूसरी ओर वे भक्ति के क्षेत्र में आगे बढ़ने लगे । जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी नेत्र-ज्योति जाती रही थी और वे माला पकड़े गायत्री मंत्र का जाप करते रहते । हर मिलने वाले को इस मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते रहते । वे अपनी अन्तिम यात्रा के लिए अपने आपको तैयार कर चुके थे ।

वैसे तो वे अपने परिवार के हर सदस्य को बहुत प्यार करते थे, पर छोटी पुत्रवधू को वे ज़्यादा पसंद करते थे । सरोज जी ने उनसे प्यार भी पाया और मीठी-मीठी डाँट का स्वाद भी चखा । यदि सच कहा जाए तो सरोज ने अब तक उन परम्पराओं का निर्वाह किये रखा, जिनकी उन्होंने नींव डाली थी ।

उनके ज्येष्ठ पौत्र तरुण इंजीनियर बने । उनके खान-पान के आधार पर तरुण ने कम्प्यूटर से जो आयु बताई, उसमें बहुत कम समय बाक़ी था । मुझे उनके स्वास्थ्य की बहुत चिन्ता रहती थी । यूनिवर्सिटी क्लास के बाद उनके दर्शन कर आशीर्वाद पाती और भाभी सेवा करने के बाद मेवा वाला आशीर्वाद पातीं । और यह आशीर्वादी मेवा उन्हें अब तक मिल रहा है और मिलता रहेगा ।

छोटे भाई दर्शन ने व्यवसाय सँभाला और उनकी पत्नी गृहस्थी में रम गईं । यज्ञ-आतिथ्य सब कुछ चलता रहता । पिताजी ने एक वार्षिक यज्ञ के अवसर पर अपनी पगड़ी दर्शन भाई के सिर पर रख दी थी और यह कहा था कि आज से तुम मेरे उत्तराधिकारी । भाई वह उत्तराधिकार तन-मन से निभा रहा है और निभाता रहेगा, क्योंकि पिताजी का आत्मविश्वास उसमें पूरी तरह निवास कर रहा है ।

वार्षिक यज्ञ के उत्तरायण काल में उन्होंने ओ३म् नाम का स्मरण कर और साधु-संतों को प्रणाम कर अपनी पाँच तत्त्वों वाली काया तज दी थी । उनके विशाल याज्ञिक परिवार ने उन्हें अश्रुपूर्ण नेत्रों से विदाई दी थी । यज्ञ उनके आगे-आगे, मंत्रोच्चार आकाश में और उनका परिवार पीछे-पीछे । चालीस साधु-संतों ने उनके अन्तिम संस्कार में भाग लेकर 'लोमम्यः स्वाहा' कहा था ।

सामवेद के यज्ञ की उसी अग्नि से उनका संस्कार किया गया जिस अग्नि को वे लाहौर से लाये थे। कुम्भ का जल नदी में समा गया था या नदी का जल कुम्भ में, यह तो मैं नहीं जानती, पर इतना ज़रूर जानती हूँ कि मेरे मार्गदर्शकों में से एक मार्गदर्शक मुझसे बहुत दूर सितारा बनकर आकाश में चला गया है और जब-जब भी मैं भोर-साँझ को सितारा देखती हूँ तो मुझे लगता है कि मेरे पिता मुझे देख रहे हैं। किसी के लिए वे अग्निहोत्री, किसी के लिए वे दादा-नाना और मेरे लिए वे सिर्फ़ जनक।

मैंने अपनी स्मृतियों के आधार पर उनकी ज़िंदगी को पढ़ने की जितनी कोशिश की, पूर्वजों के बारे में जितना जान पाई वह सब समेटकर मैं मायके को सौंपती हूँ। वही मायका, जो हर बेटी के लिए शीतल छाँह जैसा होता है।

मुझे विश्वास है कि अग्निहोत्री बने मायके के सभी सदस्य यत्नपूर्वक सहेजी गई इस थाती को सँभालकर रखेंगे और यदा-कदा मेरे साथ मिलकर पूर्वजों का स्मरण कर उन्हें नमस्कार करते रहेंगे और नमस्करणीय बने यज्ञमय, सुगन्धमय बने रहेंगे।

शुभम् !

जी-233, प्रीत विहार
दिल्ली-110092

—राज बुद्धिराजा

अभागा कौन है ?

मनुष्य कोई भी अभागा नहीं, परन्तु मानव-देह को पाकर दुर्भाग्य से बचे । दुर्भाग्य ये हैं :

1. जो प्रभु की भक्ति नहीं करता ।
2. सत्संग की गंगा बहती हो और उसमें से अमृत बिन्दु ना पीवे ।
3. अतिथि, जो परमेश्वर का प्रतिनिधि है, उसके गृह आने पर सेवा-सत्कार न करे ।
4. माता-पिता की, जो साक्षात् परमेश्वर की तरह पालन-पोषण और रक्षा करते हैं, उनकी सेवा-पूजा नहीं करता और उनको प्रसन्न नहीं करता ।
5. प्रभु ने जो धन-ऐश्वर्य दिया, उसमें से यदि दान नहीं करता और भविष्य के लिए बीज नहीं बोता ।
6. न्यायाधीश बनकर जो न्याय नहीं करता ।
7. बलवान शरीर पाकर सामर्थ्यानुसार दीन-दुःखी की सहायता नहीं करता । परन्तु विशेष रूप से उसका दुर्भाग्य भी है जिसकी सहायता नहीं होती ।
8. जिस शिष्य से गुरु उसे बड़ा मानकर सेवा नहीं कराता ।
9. स्वामी अपने सेवक को बड़ा समझकर उसके अपराध करने पर उसे कुछ न कहे ।
10. माता-पिता अपने पुत्र को बड़ा जानकर उससे भय खायें अथवा पुत्र उनको भय दिखाए । ऐसा शिष्य, सेवक और पुत्र भी दुर्भागी है ।

—महात्मा प्रभु आश्रित

आत्मोन्नति के इच्छुकों के लिए दैनिक कार्यक्रम

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

1. रात्रि शयन से पूर्व ईश प्रार्थना करें ।
2. प्रातः-जागरण के साथ प्रभु नमस्कार व प्रार्थना करें ।
3. स्वप्न को स्मरण करें ।
4. दुःस्वप्न का उतारा अथवा प्रायश्चित्त करें । अच्छे स्वप्न के लिए प्रभु का धन्यवाद करें ।
5. चारपाई से पग नीचे धरते हुए और शौचालय तक चलते जाते हुए 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः । सर्वे भद्राणि, पश्यन्तु मा कश्चिद दुःख-भाग्भवेत' का पाठ करते जाएँ ।
6. शौच तथा लघुशंका करते और वापस आते हुए 'ओ३म् नमः तेरी दया' का पाठ करते रहें ।
7. प्रत्येक कार्य के आरम्भ और अन्त में ओ३म् का स्मरण अवश्य किया करें ।
8. स्वस्तिक आसन का अभ्यास बढ़ाते रहें ।
9. उषाकाल में स्वस्तिक, सिद्ध, पद्मासन अथवा जंघासन पर बैठकर ध्यान, गायत्री का जप उपांशु रूप में मंत्रयोग की साधना के अनुसार करें और प्राणायाम सन्ध्या का अभ्यास करें ।
10. आँखें मूँद आसन लगा अपने मन से पूछें, 'मैं कौन हूँ'—यह अभ्यास प्रतिदिन 5 मिनट करें । जब-जब मन वापस आए तुरन्त वही प्रश्न 'मैं कौन हूँ' फिर करें और सफलता होने पर बढ़ाते जायें ।

11. मन को संकल्प-विकल्परहित करके त्रिकुटी में ध्यान करें । यह अभ्यास प्रतिदिन बढ़ाते जाएँ ।
12. गायत्री कीर्तन समय इस प्रकार ध्यान जमायें—'ओ३म् भूर्भुवः स्वः' हृदय खंड में, फिर 'तत्सवितुवरेण्यं' त्रिकुटी में और 'भर्गो देवस्य धीमहि' हृदय में और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' फिर त्रिकुटी में ध्यान करें, एक तार बन जाएगी ।
13. केवल उपरोक्त तार का ध्यान करें ।
14. कीर्तन के समय मूल बन्द और उड्डियान बन्द अवश्य लगायें ।
15. ऊपर और नीचे के दो दाँतों के बीच में जिह्वा को लगा देवें और उसके अग्रभाग पर ध्यान करें ।
16. प्रभु की दया की तथा न्याय की घटनाओं पर, जो अपने जीवनकाल में हुई हों, कम से कम दो बार दिन में स्मरण करें ।
17. कामवासना के उत्तेजित होने के सामान पैदा न करें ।
18. क्रोध, द्वेष, वैर, बदलाबाजी और घृणा से बचें ।
19. धन कमाने तथा खान-पान में लोभवृत्ति से सावधान रहें ।
20. गृह, परिवार तथा मान का मोह कम करते जाएँ ।
21. अहंकारवृत्ति का अनुभव करें ।
22. स्वप्नदोष से शक्ति का ह्रास होता है, इससे बचें ।
23. ईश्वर, मृत्यु, जन्म समय की निःसहायी अवस्था और अपने किये कामों को अर्थात् मेरे आज के कृत्य में किसी की हानि या अपमान तो नहीं हुआ, याद करें । अवज्ञा होने पर प्रायश्चित्त करें ।
24. अपने स्वरूप (शक्ल) को कम से कम 5 मिनट देखने का यत्न करें ।
25. क्रोध घातक . लाभ बाधक है—इन दोनों वृत्तियों से सावधान ।
26. जप की दैनिदः संख्या लिखा करें ।
27. दिन में अधिक से अधिक समय मौन रहें अथवा कम बोलें ।
28. संध्या करते समय हँसमुख रहें । इसका सम्बन्ध आनन्दमय कोष के

साथ है ।

29. पाँच मिनट हँसमुख बैठकर हृदय में ध्यान रखें और 'ओ३म्' का जप करें अथवा संकल्प-विकल्परहित मन को रखें ।
30. भोजन के समय प्रत्येक ग्रास के साथ प्रभु का स्मरण करें । एक ग्रास पूरा चबा लेने पर ही दूसरा ग्रास उठाएँ ।
31. अपनी साधना के पाठों को दोहराया करें ।

क्रोध को कैसे दूर करें

क्रोध को छोड़ने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिए :

1. क्रोध को दूर करने की तीव्र इच्छा होनी चाहिए, कि 'मैं इस क्रोध से बहुत दुःखी हो चुका हूँ। अब मैं इसे छोड़ ही देना चाहता हूँ।'
2. क्रोध को छोड़ने के लिए दृढ़ संकल्प होना चाहिए, कि 'मैं पूरा परिश्रम करके क्रोध को छोड़कर ही श्वास लूँगा।'
3. जब तक क्रोध पूरी तरह छूट न जाये, तब तक क्रोध को छोड़ने के लिए पूर्ण पुरुषार्थ करते ही रहें।
4. शान्त स्वभाव के व्यक्तियों के साथ उठना-बैठना आदि व्यवहार रखें, क्रोधी स्वभाव वालों से दूर रहें।
5. 'दूसरे लोग मेरे साथ कम से कम ऐसा (अच्छा) व्यवहार तो अवश्य ही करें,' इस प्रकार की इच्छाओं को कम करते जायें।
6. प्रतिदिन कुछ समय (2-3 घंटे) मौन रहने का अभ्यास करें।
7. जब कोई क्रोध की घटना उपस्थित होने वाली हो, तब अवश्य ही मौन हो जायें। इसके लिए तब तक मुँह में थोड़ा पानी भरकर रख सकते हैं, जब तक क्रोध की घटना समाप्त न हो जाए। बाद में उस पानी को फेंक दें।
8. यदि क्रोध की घटना के समय मौन रहना संभव न हो और बोलना आवश्यक ही हो, तो बोलने से पूर्व उसी समय यह दृढ़ संकल्प करें, कि 'बिना क्रोध किये ही बातचीत करूँगा।'
9. यदि किसी घटना में बहुत अधिक क्रोध आने की संभावना हो और आप उसे नियंत्रित करने में अपने-आपको असमर्थ अनुभव करते हों, तो उस

स्थान से हटकर दूर चले जायें ।

10. यदि कभी भूल से क्रोध कर बैठें, तो अपनी स्थिति को ठीक करने के लिए एक गिलास ठण्डा पानी पीयें ।
11. यदि क्रोध कर बैठें, तो उसका कुछ प्रायश्चित्त करें, अर्थात् उस दिन एक घंटा विशेष रूप से मौन रहकर ईश्वर का ध्यान, प्रार्थना करें और फिर संकल्प करें कि 'अब क्रोध नहीं करूँगा ।'
12. प्रतिदिन दोनों समय (प्रातः और सायं) ईश्वर का ध्यान करें और ईश्वर से प्रार्थना करें, कि 'हे प्रभो ! मुझसे क्रोध दूर कर दीजिए और मेरी बुद्धि को अच्छे मार्ग पर चलाइए ।'

निम्नलिखित दोनों सूचियों को प्रतिदिन कम से कम तीन बार पढ़ें :

सूची 1 : क्रोध से हानियाँ

1. क्रोध करने से सिर में दर्द होता है ।
2. क्रोध करने से ब्लड प्रैशर बढ़ता है ।
3. क्रोध करने से एसिडिटी होती है ।
4. क्रोध करने से शरीर में कम्पन रोग होता है ।
5. क्रोध करने से शरीर में कमजोरी आती है ।
6. क्रोध करने से व्यक्ति पागल हो जाता है ।
7. क्रोध करने से दूसरे लोग घृणा करते हैं, कोई पास बैठना नहीं चाहता ।
8. क्रोध करने से समाज में प्रतिष्ठा कम हो जाती है, निन्दा भी होती है ।
9. क्रोध करने से बुद्धि का ह्रास होता है तथा निर्णय लेने की क्षमता घटती है ।
10. क्रोध करने से मन, वाणी और शरीर पर कोई नियंत्रण नहीं रहता, परिणामस्वरूप व्यक्ति कुछ भी गलत बोल देता है, या गलत काम कर बैठता है ।
11. क्रोध करने के बाद जब व्यक्ति होश में आता है, तब पश्चात्ताप करता

है, अर्थात् दुःखी होता है, कि 'मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था ।'

12. क्रोध करने से अगला जन्म भी अच्छा नहीं मिलता ।

सूची 2 : प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से लाभ

1. प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से शरीर स्वस्थ रहता है ।
2. प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से शरीर की वृद्धि होती है ।
3. प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से मन प्रसन्न होता है ।
4. प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से बुद्धि का विकास होता है ।
5. प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से निर्णय लेने की क्षमता बढ़ती है ।
6. प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से परस्पर सबका सुख बढ़ता है ।
7. प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से सभी लोग उसे चाहते हैं, प्रेम करते हैं और उससे संबंध रखना चाहते हैं ।
8. प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से मन, वाणी और शरीर पर नियंत्रण रहता है । परिणामस्वरूप व्यक्ति अच्छे काम करता है और मीठी वाणी बोलता है ।
9. प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से अगला जन्म भी अच्छा मिलता है ।

इन उपायों को लम्बे काल तक अपनाते रहने से व्यक्ति का क्रोध धीरे-धीरे कम हो जाता है और एक समय ऐसा आ जाता है, जब क्रोध पूरी तरह से छूट जाता है । आशा है, आप इन उपायों से लाभ उठायेंगे ।

—श्री विवेक भूषण दर्शनाचार्य

शान्ति-भजन

शान्ति कीजिये प्रभु त्रिभुवन में । शान्ति कीजिये ॥

जल में थल में और गगन में,
अन्तरिक्ष में अग्नि पवन में ।
ओषधि वनस्पति वन उपवन में,
सकल विश्व में जड़ चेतन में ॥ शान्ति···

ब्राह्मण के उपदेश वचन में,
क्षत्रिय के द्वारा हो रण में ।
वैश्य जनों के होवे धन में,
और शूद्र के हो तन-तन में ॥ शान्ति···

शान्ति राष्ट्र निर्माण सृजन में,
नगर ग्राम में और भवन में ।
जीव मात्र के हो तन - मन में,
और प्रकृति के हो कण-कण में ॥ शान्ति···

यज्ञ से विश्व का कल्याण

होता है सारे विश्व का, कल्याण यज्ञ से ।
जल्दी प्रसन्न होते हैं, भगवान् यज्ञ से ॥
ऋषियों ने ऊँचा माना है, स्थान यज्ञ का ।
करते हैं दुनिया वाले, सब सम्मान यज्ञ का ॥
दर्जा है तीन लोक में, महान् यज्ञ का ।
जाता है देवलोक को, इंसान यज्ञ से ॥ होता···

जो कुछ भी डालो यज्ञ में, खाते हैं अग्निदेव ।
सबको प्रसाद यज्ञ का, पहुँचाते अग्निदेव ॥
बदले में एक के अनेक, दे जाते अग्निदेव ।
बादल बनाकर भूमि पर, बरसाते अग्निदेव ॥
पैदा अनाज होता है, भगवान् यज्ञ से ।
होता है सार्थक वेद का, विज्ञान यज्ञ से ॥ होता···

शक्ति और तेज यश भरा, इस शुद्ध नाम में ।
साक्षी यही है विश्व का, हर नेक काम में ॥
पूजा है इसको श्रीकृष्ण, भगवान् राम ने ।
होता है कन्यादान भी, इसी के सामने ॥
मिलता है राज्य, कीर्ति, सन्तान यज्ञ से ॥ होता···

सुख-शान्तिदायक मानते हैं, सब मुनि इसे ।
वशिष्ठ विश्वामित्र और नारद मुनि इसे ॥

इसका पुजारी कोई भी, पराजित नहीं होता ।
भय यज्ञकर्ता को भी, किंचित् नहीं होता ॥
होती हैं सारी मुश्किलें, आसान यज्ञ से ॥ होता···

चाहे अमीर है कोई, चाहे गरीब है ।
जो नित्य यज्ञ करता है, वह खुशनसीब है ॥
हम सब में रहे, सर्वदा यज्ञीय भावना ।
'जखमी' की सच्चे दिल से है, यह श्रेष्ठ कामना ॥
होती है पूर्ण कामना, महान् यज्ञ से ॥ होता···

□□

शांतिदेवी अग्निहोत्री, गणेशदास अग्निहोत्री, दर्शनकुमार एवं सत्संगी महानुभाव और पुनीता-वरुण

बच्चों के यज्ञोपवीत के अवसर पर (बायें से दायें) दर्शनकुमार, गणेशदास अग्निहोत्री, शांतिदेवी अग्निहोत्री, सुनीता बुद्धिराजा, शिव प्रताप एवं ब्रह्मचारी

महात्मा प्रभु आश्रित जी